समयसार कलश एवं निजामृतपान का तुलनात्मक अध्ययन

-डॉ. ज्योतिबाबू जैन

भगवान् महावीर के पश्चात् अध्यात्म एवं दिगम्बर श्रमण परम्परा के मौलिक स्वरूप को उद्घाटित करने वाले आचार्य कुंदकुंद प्रथमाचार्य हैं। आपके द्वारा सृजित समयसार जिनागम में अध्यात्म साधना का प्रतिपादक शिरोमणि ग्रंथ है। समयसार ग्रंथ का मूल प्रतिपाद्य नव तत्त्वों के निरूपण के माध्यम से तत्त्वों में छुपी हुई आध्यात्मिक ज्योति का उद्घाटन है। समयसार रूपी मंदिर पर आचार्य अमृतचंद्र ने आत्मख्याति टीका के साथ आध्यात्मिक कलश रचकर कलशारोहण किया है, जिसे विश्व का प्रथम संस्कृत नाटक काव्य कहा जा सकता है।

इन कलशों के हार्द को खोलने वाले हैं वर्तमान में कुंदकुंद परंपरा के जीवंत रूप श्रमण संस्कृति के उन्नायक आचार्यश्री विद्यासागर, जिन्होंने संस्कृत कलशों में व्याप्त क्लिष्टता एवं गरिष्टता को समाप्त कर मातृभाषा में पद्यानुवाद कर ऐसी सरलता प्रदान की है, जिससे जनसामान्य निजामृत की ओर सहज ही प्रेरित हो रहा है। इस आध्यात्मिक काव्य का माधुर्य एवं प्रसाद गुणमय ओजपूर्ण प्रवाह पाठक की आत्मा को आनंद सरोवर में अवगाह करा देता है। गद्य की अपेक्षा पद्य की स्वरलहरी पाठक के हृदय को आनंद से भर देती है। इसीलिए आचार्यश्री ने इस काव्य को निजामृत की संज्ञा दी है। आचार्यश्री का यह पद्यानुवाद अनुभूतिस्वरूप है, जिसमें स्वयं की अनुभूति शब्दरूप में परिणत हुई है, जिसमें केवल शब्दों के फूल ही नहीं बल्कि अनुभूति की सुगंध भी है।

आचार्यश्री ने अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि अलंकारों के प्रयोग में शांतरस को प्रमुखता दी है। समयसार कलशों में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है; किन्तु आचार्यश्री ने एकमेव छंद का प्रयोग किया है जिसका नामकरण आचार्यश्री ने ज्ञानोदय में किया है। निजानुभव करने की प्रेरणा इतनी सहज और सुगम है कि श्रोता मंत्रमुग्ध होकर सहज ही स्वयं

बोध को प्राप्त कर सकता है, वह इस प्रकार दृष्टव्य है-

खेल खेलता कौतुक से भी रुचि ले अपने चिंतन में
मर जा पर कर निजानुभव कर घड़ी-घड़ी मत रच तन में।
फलतः पल में परम पूत को द्युतिमय निज को पायेगा,
देह-नेह तज सज-धज निजको निज से निज घर जायेगा।।[1]

इसी प्रकार के अनुभूतिमूलक प्रसंगों को निजामृत में उद्घाटित किया गया है। निजामृतपान का प्रयोजन निजानंद के साथ भव्य प्राणियों को निजामृतपान की प्रेरणा है। आचार्य श्री ने ग्रंथ का प्रयोजन इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

अमृत-कलश का मैं करूँ, पद्यमयी अनुवाद।
मात्र कामना मम रही, मोह मिटे परमाद।।[2]

ग्रंथ का प्रयोजन प्रमाद का त्याग कर निजामृत ग्रहण है। आचार्य श्री ने आचार्य अमृतचंद्र के 278 संस्कृत कलशों का हिन्दी में पद्यानुवाद उतने ही छंदों में किया है अर्थात् प्रत्येक कलश का अनुवाद एक-एक छंद में किया है, जोकि 'ज्ञान उदय' ज्ञानोदय के रूप में सार्थक है। आचार्य अमृतचंद्र ने रहस्यपूर्ण और क्लिष्ट शब्दावली को छंदों में ढालना अत्यन्त कठिन तो था ही फिर उसका भावानुवाद कर उसे काव्य के सांचे में ढालना और भी कठिन है। आचार्य अमृतचंद्र ने अपने कलशों में अनुष्टुप, आर्या, द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रांता, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, बसंततिलका, स्रग्धरा, मालिनी आदि छंदों का प्रयोग कर अपने काव्य कला का परिचय दिया है। वहीं निजामृतपान में ऐसे विशिष्ट कलश काव्य का भावानुवाद एक ही छंद में रचकर आचार्य विद्यासागर जी ने अपने महाकवित्व का परिचय दिया है। आचार्यश्री ने इस आध्यात्मिक काव्य को एक ही छंद में रचकर उसका भाव हृदयग्राही एवं बोधगम्य बना दिया है, जोकि पाठक के चंचल मन को एक ही धारा में प्रवाहित कर अविचल बना देते हैं। आचार्य श्री ने 278 कलशों को इतने ही ज्ञानोदय छंद में निबद्ध किया है, साथ ही 42 दोहे एवं एक बसंततिलका छंद को भी काव्य में समाहित किया है। आचार्य विद्यासागर जी ने निजामृतपान में समयसार कलश के स्याद्वाद अधिकार को दो भागों में स्याद्वाद अधिकार और साध्य साधन अधिकार

से निरूपित किया है, जिसमें जीवाजीवाधिकार, कर्ताकर्माधिकार, पुण्यपापाधिकार, आस्रवाधिकार, संवराधिकार, निर्जराधिकार, बंधाधिकार, मोक्षाधिकार, सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार, स्याद्वादाधिकार, साध्य-साधकाधिकार के रूप में ग्रहण किया है और नाटक समयसार की भांति स्याद्वादाधिकार के 17 कलशों को स्याद्वादाधिकार में तथा 15 कलशों को साध्य-साधक अधिकार में अनुवादित किया है।

यद्यपि समयसार कलश के अन्य पद्यानुवाद भी उपलब्ध हैं, परन्तु वे बनारसी लिबासवत् शब्दजाल मात्र हैं, जिनमें केवल शब्दों को सौंदर्य देखने को मिल भी जावे तो अनुभूति की सुगंध कहां। पं. बनारसीदास जी ने अनेक बार समयसार का अध्ययन करने के उपरान्त भी स्वयं लिखा है-

करनी को रस मिट्यो आयो न निज का स्वाद,
भई बनारसी की दशा जैसे ऊँट को पाद।

वर्तमान में भी अध्यात्म की कुछ इसी प्रकार की स्थिति हो रही है, क्योंकि समयसार अध्यात्म कलश आदि ग्रंथों में ज्ञानी सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा के कारण आदि प्रयोगों से पाठक सहज ही यह निर्णय पर पहुंच जाते हैं कि गृहस्थ अवस्था में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तो संभव हैं ही फिर भोग भले ही भोगते रहो कर्मों की निर्जरा तो होगी ही, ऐसे बुद्धिमानों के विषय में आचार्यश्री लिखते हैं कि यदि भोग ही निर्जरा का कारण है तो बंध का कारण क्या होगा? यदि सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का कारण है, तो कौन से सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का कारण है, क्योंकि देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करते हुए सम्यग्दृष्टि का उपयोग बंध का कारण है ऐसा आगम का कथन है। फिर सम्यग्दृष्टि मुनि या श्रावक के द्वारा की गई आराधना तो बंध का कारण और भोग निर्जरा का कारण कैसे संभव है? आचार्यश्री कलश के पद्यानुवाद में लिखते हैं-

यह सब निश्चित अतिशय महिमा अविचल शुचितम ज्ञानन की,
अथवा मुनि की विरागता की समता में रम मानन की।
विधि के फल को समय पर भोग भोगता भी त्यागी,
तभी नहीं वह विधि से बंधता बंधे असंयत पर रागी।।[3]

समयसार आदि अध्यात्म ग्रंथों में वीतरागी सम्यग्दृष्टि को ही ग्रहण किया है और वीतराग चारित्र के साथ आत्मानुभूति, ज्ञानानुभूति, स्वानुभूति का अविनाभाव सम्बन्ध स्वीकार किया है। यह सब रत्नत्रय की निधियाँ हैं, जो निःसंगी मुनिराजों में ही उपलब्ध हो सकती हैं। उनके ही पूर्व कर्म के उदय से जो अनिच्छा पूर्वक पंचेन्द्रिय के विषयों में जो प्रवर्तन (भोग) होता है वह निर्जरा का कारण है राग पूर्वक भोग तो केवल बंध का ही कारण है। पुण्यपापाधिकार में आचार्य श्री लिखते हैं-

कर्ता नहीं पर मोह उदय वह होता मुनि में जब तक है,
समीचीन नहिं ज्ञान कहाता अबुद्धि पूर्वक तब तक है।
सराग मिश्रित ज्ञान सुधारा बहती समाधिरत मुनि में,
राग बंध का, ज्ञान मोक्ष का कारण हो भय कुछ नहिं पै।।[4]

इस प्रकार आचार्यश्री का दृष्टिकोण मिथ्यात्वरूपी विष का त्याग कराके अमृततुल्य सम्यक्त्व का निजामृत प्राप्त कराना है।

जिस प्रकार अमृत का कार्य जीवन को अमरत्व प्रदान करना है, उसी प्रकार निजामृत का भावपूर्ण मनन-चिंतन निज में निहित अनन्त गुणों का बोध करना है। गुणों का बोध ही शुद्ध स्वभाव की ओर अग्रसर कराता है और शुद्धस्वभाव की प्राप्ति ही साक्षात् अमृतस्वरूप ही है तथा आत्मा को अक्षय-अनंत सुखरूप सिद्धत्व को प्रदान कराता है।

ज्ञान आत्मा का अनन्य गुण है, वह तीन प्रकार से बताया है- शब्दज्ञान, अर्थज्ञान और ज्ञानानुभूति। आचार्यश्री ने निजामृतपान में इस बात को स्पष्ट करने के लिए कहा है कि- शब्द और अर्थ का ज्ञान गृहस्थ-दशा में संभव है; किन्तु ज्ञानानुभूति त्रिकाल में भी संभव नहीं है। ज्ञानानुभूति या आत्मानुभूति मुनि बनने पर अप्रमत्तदशा में ही संभव है। जैसे कहा भी है-

ज्ञान बिना रट निश्चय-निश्चय, निश्चयवादी भी डूबे,
क्रिया कलापी भी ये डूबे, डूबे संयम से ऊबे।
प्रमत्त बनके कर्म न करते अकम्प निश्चल शैल रहे,
आत्म-ध्यान में लीन किन्तु मुनि तीन लोक पर तैर रहे।।[5]

गृहस्थ दशा में तो राग के साथ भोगानुभूति ही सम्भव है।

ज्ञानानुभूति की भावना मात्र है। भावना और अनुभूति में उतना ही अंतर है जितना जल के चिंतन और जलपान में है। इसी बात की पुष्टि करते हुए ज्ञानार्णव में कहा है कि-

रत्नत्रयमनासाद्यः यः साक्षाद्ध्यातुमिच्छति।
खपुष्पैः कुरुते मूढः स बन्ध्या सुत शेखरम्।।[6]

अर्थात् महाव्रतों को स्वीकार किये बिना जो आत्मध्यान की इच्छा करता है वह मूर्ख आकाश के फूलों से बन्ध्या के पुत्र के लिए सेहरा बांधने का प्रयास कर रहा है।

निजामृतपान की भाषा शैली-

अध्यात्म क्षेत्र में भाषा से अधिक भावों का महत्त्व होता है। आचार्यश्री की भाषा तो पर्याप्त सुधार लिये हुए है ही, भावों का प्रकाशन भी पर्याप्त रूप से सहज स्वाभाविक है। निजामृतपान की भाषा विशुद्ध हृदय का प्रकटीकरण है जो कि पाठक पर उज्ज्वल अमिट प्रभाव छोड़ती है, अध्यात्म और शांत रस से सराबोर करने वाली है।

इसका पुनः पुनः पाठन, मनन, कई गुना आनंद को बढ़ा देता है। भाषा की सरलता कंठस्थ ही नहीं हृदयस्थ होने को लालायित रहती है। जिसका एकादि उदाहरण द्रष्टव्य है-

सहज ज्ञान से स्वपर भेद को परमहंस यह मुनि नेता,
दूध-दूध को नीर-नीर को जैसा हंसा लख लेता।
केवल अलोल चेतन गुण को अपना विषय बनाता है,
कुछ भी फिर ना करता मुनि बन मुनिपन यही निभाता है।[7]

निजामृत पान की शैली अलौकिक समयसार के अनुरूप आध्यात्मिक होने के साथ रोचक है, जिसमें सरसता, सरलता और खुलापन समाविष्ट है। शांतरस के दर्पण में परमात्मा का दर्शन होता है। आचार्यश्री की काव्य धारा विषय कषायों की तीव्रता को समाप्त कर आत्मा को सरलता और आनंद से भर देती है। सरल सुबोध शैली का दर्शन द्रष्टव्य है-

निज गुण कर्ता आत्म है पर कर्ता पर आप,
इस विध जाने मुनि सभी निज-रत हो तज पाप।

प्रमाद जब तक तुम करो पर कर्तापन मान,
तब तक विधि बन्धन हो, हो न समय का ज्ञान।[8]

निजामृतपान काव्य गुणों से सम्पन्न आध्यात्मिक काव्य है, उसमें ओज, माधुर्य, प्रसाद गुण विद्यमान हैं। आचार्यश्री संस्कृत, हिन्दी दोनों ही काव्य लेखन में सिद्धहस्त हैं। इसमें रस, छंद, अलंकारों की छटा भी पगपग पर दृष्टिगोचर होती है। अनुप्रास की छटा दृष्टव्य है-

विश्वसार है सर्वसार है समयसार का सार सुधा।
चेतन रस आपूरित आतम शत शत वंदन बार सदा।।[9]

इसी प्रकार अध्यात्म में नीति का समावेश अध्यात्म को सुशोभित कर रहा है। मंगल कामना में द्रष्टव्य है-

पापी से मत पाप से घृणा करो अयि! आर्य।
नर वह ही बस पतित हो, पावन कर शुभ कार्य।।[10]

आचार्यश्री की दार्शनिक दृष्टि में आध्यात्मिकता और दार्शनिकता का समन्वय है जिनका भाल समयसार में और चरण मूलाचार में प्रतिष्ठित है। निजामृतपान उनके समयसार में प्रतिष्ठित भाल का दिग्दर्शन है। समयसार कलश निश्चय नय का विषय प्रतिपादक होकर भी अनेकान्तमय है। इसमें जीव के कर्ता-अकर्ता, बंध-अबंध, मूर्त-अमूर्त, मोही-निर्मोही आदि भावों का वर्णन अविरोधी नय दृष्टियों से किया गया है। निजामृतपान में द्रष्टव्य है-

भिन्न-भिन्न नय क्रमशः कहते आत्मा मोही निर्मोही,
इस विध दृढ़तम करते रहते अपने-अपने मत को ही।
पक्षपात से रहित बना है मुनि मन निश्चल केतन है,
स्वानुभवी का शुद्ध-ज्ञान धन केवल चेतन चेतन है।।

आचार्यश्री ने अपने अनेकान्त दृष्टि से एकान्त नयाभासों पर प्रहार कर अनेकान्त-स्याद्वाद की स्थापना की है-

मेटे वाद विवादको निर्विवाद स्याद्वाद।
सब वादों को खुश रखे पुनि पुनि कर संवाद।।
समता भज, तज प्रथम तू पक्षपात परमाद।
स्याद्वाद आधार ले समयसार पढ बाद।।[11]

गुण न हिरानो गुण गाहक हिरानो है कहावत के अनुसार अमृत कलशों में जो अमृत भरा हुआ था उस अमृत स्वरूप गुण का गाहक आचार्य विद्यासागर जी पूर्व हिराया हुआ था। पं. बनारसीदास की सूक्ति- **नाटक सुनत ही फाटक खुलत हैं** को सार्थक कर आचार्यश्री ने निजामृतपान में सार्थक कर दिखाया है। इसमें विषय तो आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचंद्र का ही है; परन्तु वर्ण्य विषय को रोचक और पाचक बनाकर प्रस्तुत किया है-

पशु सम एकान्ति का निश्चय ज्ञान पूर्णतः सोया है।
पर में उलझा हुआ सदा है निज बल को बस खोया है॥
स्याद्वाद यद्यपि ज्ञान वह सकल ज्ञेय का है ज्ञाता।
तदपि निजीपन तजता नहीं है स्वरस भरित ही है भाता॥[12]

आचार्यश्री ने प्रारम्भ और अन्त मंगल जिन तीन दोहों में किया है वह तो आज प्रत्येक गुरु भक्त के हृदय के कण्ठाहार ही हैं, जिनमें भक्ति भावना प्रकट कर भक्ति की उपादेयता सिद्ध करती है। भक्ति ही समयसार की प्राप्ति का सोपान है, जिसके माध्यम से आचार्यश्री ने अध्यात्म में भक्ति भावना दर्शायी है और यही भक्ति भाव इन दोहों में प्रकट किया है-

कुन्दकुन्द को नित नमूँ हृदय कुन्द खिल जाये।
परम सुगंधित महक में जीवन मम घुल जाये॥
अमृतचन्द्र से अमृत, है झरता जग अपरूप।
पी-पी मम मन मृतक भी अमर बना सुख कूप॥
तरणि ज्ञानसागर गुरो तारो मुझे ऋषीश।
करुणा कर करुणा करो कर से दो आशीष॥[13]

आचार्यश्री द्वारा रचित दोहे निजामृतपान के कलश स्वरूप मौलिक काव्य निधि है जिनमें कबीर, बुधजन कवियों के दर्शन होते हैं। आचार्यश्री ने सभी अधिकारों के अन्त में दोहों के माध्यम से अंशों को पूर्णता प्रदान की है जिस प्रकार रस पूर्ण कलश यदि झलकता नहीं तो उसका गौरव प्रसिद्धी को प्राप्त नहीं होता। उसी प्रकार निजामृतपान कलश रस पूर्ण होने पर भी दोहों के साथ झलकता हुआ न होता तो वह पाठक को पर्याप्त

आह्लादित नहीं कर पाता। सार रूप में दुःखों से मुक्ति का उपाय आचार्यश्री ने निम्न दोहों में बताया है-

ज्ञान दुःख का मूल है ज्ञान हि भव का कूल।
राग सहित प्रतिकूल है राग रहित अनुकूल॥
चुन चुन इनमें उचित को अनुचित मत चुन भूल।
समयसार का सार है, निज बिन पर सब धूल॥[14]

निजामृतपान संतों को आत्म वैभव प्रदान कर निजानंद में डुबोने में समर्थ है। यह कर्म निर्जरा का हेतु और मोक्ष का सोपान है। अंत मांगलिक दोहे में तो आचार्यश्री ने माना निजामृतपान का सम्पूर्णसार ही कह दिया है-

मुनि बन मन से जो सुधी करे निजामृतपान।
मोक्ष और अविरल बढ़े चढ़े मोक्ष सोपान॥[15]

इस प्रकार आचार्यश्री ने दोहों की समष्टि से ग्रंथ को बहुत सुन्दर रूप से गठित किया है, जिसमें कुल 42 दोहे, ज्ञानोदय छंद और एक बसंततिलका कुल 321 पद्यों में आचार्यश्री ने अपने निजानुभव की तरंगों को काव्य का रूप प्रदान किया है। अपनी चेतन अनुभूतियों को अचेतन काव्यधारा में प्रवाहित करना किसी साधारण कवि का कार्य नहीं है, परन्तु उस असाधारण कार्य को भी वर्तमान में कुन्दकुन्द के प्रतिरूप महाकवि आचार्य विद्यासागर जी ने बड़ी सरलता से कर दिखाया है, जोकि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण व उपयोगी कृति है।

संदर्भ :

1. निजामृतपान, जीवाजीवाधिकार, पद 23
2. निजामृतपान, जीवाजीवाधिकार, पद 7
3. निजामृतपान, निर्जराधिकार, पद 334
4. निजामृतपान, पुण्यपापाधिकार, पद 110
5. निजामृतपान, पुण्यपापाधिकार, पद 111
6. आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, सम्यग्दर्शनाधिकार
7. निजामृतपान, कर्ताकर्माधिकार, पद 50
8. निजामृतपान, कर्ताकर्माधिकार, अंतिम दोहा, 3, 2
9. निजामृतपान,, जीवाजीवाधिकार, पद 36
10. निजामृतपान, अंतिम मंगलकामना, दोहा 7

ANEKANTA - ISSN 0974-8768

11. निजामृतपान, स्याद्वाद अधिकार, अंतिम दोहा 1, 2
12. निजामृतपान, स्याद्वाद अधिकार, पद 244
13. निजामृतपान, प्रारम्भ और अंत मंगलाचरण दोहा 1, 2, 3
14. निजामृतपान, सर्वविशुद्धाधिकार, अंत दोहा, 1, 2
15. निजामृतपान, अंतिम अधिकार, सुफल दोहा 5

-सहायक आचार्य
जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान)

******